REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2018

'भट्टिकाव्य' में प्रयुक्त तिङन्त पदों का व्याकरणशास्त्रीय विवेचन

डॉ. योगेश शर्मा[1] , सुलक्षणा शर्मा[2]
[1] असिसटेंट प्रोफेसर , वनस्थली विद्यापीठ टोंक, राजस्थान.
[2] शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान.

शोध संक्षेप –

जिस तंत्र में साधु शब्द का ज्ञान होता हैं, उसे 'व्याकरण' कहते हैं। व्याकरणशास्त्र को 'शब्दानुशासन' इस अपरसंज्ञा से भी अभिहित किया गया हैं। 'व्याकरण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है–

व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति–शब्दज्ञानजनकं 'व्याकरणम्'। संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण का विशिष्ट स्थान है। इसकी गणना वेदाङ्गों में होती हैं। व्याकरणज्ञान के बिना वेद–वेदान्त, स्मृति–पुराण, इतिहास–काव्य आदि किसी भी शास्त्र में प्रवेश मुश्किल होता है। इसलिए भट्टिकाव्य की भी महाकवि भट्टि ने व्याकरणज्ञान करवाने के लिए ही रचना की थी। व्याकरणशास्त्र की कठिनाइयों को दूर करते हुए काव्य के द्वारा व्याकरण सिखाने का प्रयत्न करने का श्रेय महाकवि 'भट्टि' को हैं। भट्टिकाव्य के माध्यम से कवि ने सन्धि, समास, कृदन्त, तद्धित, सुबन्त, तिङन्त आदि का पाणिनीय व्याकरण के अनुरूप नवीन प्रयोग किया हैं। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में भट्टिकाव्य में प्रयुक्त तिङन्त पदों पर चर्चा की गई है।

प्रस्तावना –

'भट्टिकाव्य' महाकवि भट्टि की कृति हैं। इसका निर्माण 641 ईस्वी में हुआ। भट्टिकाव्य महाकवि भट्टि की उपलब्ध एकमात्र रचना हैं। यह महाकाव्य 22 सर्ग और 1624/1625 श्लोकों में विभक्त है तथा महाकाव्य के लक्षणों से पूर्णतया समन्वित है।

इस महाकाव्य को स्वरूप की दृष्टि से चार काण्डों या भागों में विभक्त किया गया है–

1. **प्रथम काण्ड (प्रकीर्णकाण्ड)** – इस काण्ड में व्याकरण के प्रकीर्ण विषयों का प्रयोग होने पर भी प्रधान रूप से कृत् प्रत्ययों का निरूपण किया गया है।
2. **द्वितीय काण्ड (अधिकारकाण्ड)** – इस काण्ड में व्याकरण के कतिपय अधिकारों का निरूपण है, जैसे– द्विकर्मक धातु, ताच्छील्य अर्थ में होने वाले कृत्प्रत्यय, आत्मनेपद, कारक, विभक्ति आदि।
3. **तृतीय काण्ड (प्रसन्नकाण्ड)** – दशम से त्रयोदश तक चार सर्ग इसी के अंतर्गत है। इस काण्ड में मुख्यतया अलंकार, माधुर्यगुण, किसी घटना का प्रत्यक्ष वर्णन तथा प्राकृत व संस्कृत भाषा का मिला–जुला रूप है।
4. **चतुर्थ काण्ड (ति¾न्तकाण्ड)** – इस काण्ड में 14वें से 22वें सर्ग तक है। इसमें संस्कृत के एक जटिल स्वरूप ति¾न्त के विविध शब्द रूपों को प्रदर्शित करता हैं। इस काण्ड के नौ सर्गों में क्रमशः– लिट्, लु¾, लृट्, ल¾, लट्, लि¾, लोट्, लृ¾ और लुट् लकार के प्रयोग किए गए हैं।

भट्टिकाव्य में ति¾न्त काण्ड सबसे बड़ा होने तथा महाकवि भट्टि द्वारा एक सर्ग में एक ही लकार और प्रत्यय के साथ धातुओं का सुन्दर क्रम प्रस्तुत करता है।

यथा –

विचुक्रुशुर्भमिपतेर्महिष्यः केशांल्लुलुञ्चुः स्ववपूंषि जघ्नुः।
विभूषणान्युनमुमुचुः क्षमायां पेतुर्बभञ्जुर्वलयानि चैव।। भ.का.3/22

एक श्लोक में एक भी सुबन्त पद का प्रयोग किए बिना केवल धातु रूपों से ही अपने काव्य प्रवाह को भट्टि ने आगे बढ़ाया है। इस तरह

का प्रयोग 'पुष्पतुल्यानां आख्यातानां सुबन्त पदव्यवधानादृते गुम्फनादिह्रयमाख्यातमाला'' कहा गया है। यथा–

भ्रैमुर्ववल्मुर्ननृतुर्जजक्षुर्जगु समुत्पुष्लुछिरे निषेदुः।
आस्फोटयांचकुरभिप्रणेदु रेजुर्ननन्दु र्विययु समीयुः।। भ.का. 13/28

पूरे महाकाव्य में भट्टि ने 480 के लगभग धातुओं का प्रयोग किया है। जिसमें से 280 परस्मैपदी, 120 आत्मनेपदी, 80 उभयपदी धातुओं का प्रयोग है। भ.का में 480 धातुओं में से 13 अन्यत्र दुर्लभ धातुओं का प्रयोग किया गया है तथा लगभग 22 धातुओं का एक से अधिक गणों में प्रयोग है। 10 गण एवं 9 लकारों के साथ ही भट्टिकाव्य में आत्मनेपद, परस्मैपद, षत्व, णत्व, सन्नत के भी प्रयोग पाणिनीय सूत्र क्रम से दिए गए है।

सर्वप्रथम भ.का में ति¾न्त के विविध शब्द रूपों को प्रदर्शित करने के लिए तीन भागों में विभाजित किया है–

1. गणों के अनुसार पद
2. लकारों के अनुसार पद
3. आत्मनेपद–परस्मैपद के अनुसार पद

1. गणों के अनुसार पद –

(1) भ्वादिगण – अन्य सभी गणों की अपेक्षा भ्वादिगण की धातुओं की संख्या भ.का. में सबसे अधिक हैं। इस गण की लगभग 231 धातुएँ भ.का. में उपलब्ध है, जो भ.का. में प्रयुक्त धातुओं की आधी संख्या हैं। इस गण की धातुओं से परे प्रत्यय के बीच में 'शप्' विकरण 'अ' लगता हैं, ''कर्तरि शप्'' सूत्र से।

* भ.का. में भू धातु के लगभग 20 प्रयोग उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ प्रयोग सम्, उत्, अनु, अभि उपसर्गों के साथ मिलते है।
  भवति – भ.का. 18/35[1] लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन
  अभूत् – भ.का. 1/1[2] लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन
* जि जये (जीतना) धातु, परस्मैपदी – इस धातु का प्रयोग अभिनव अर्थ में सकर्मक हैं, और उत्कृष्ट होने के अर्थ में अकर्मक हैं। भ.का. में इस धातु के 8 प्रयोग मिलते हैं–
  केन जायिष्यते यमः – भ.का. 16/2[3] में कर्म में लृट् लकार हैं।
  सपत्नांश्चाऽधिजीयास्म संग्रामे च मृषीमहि – भ.का. 19/2[4]
  यहाँ अधिजीयास्म में 'जि' धातु अकर्मक होने पर भी उपसर्ग के कारण सकर्मक बन गई।
* च्युङ् गतौ – इस धातु का भ.का. में एक प्रयोग मिलता हैं, जो सामान्य गति अर्थ में न होकर 'गिरना' 'विचलित होना' अर्थ में हैं।
  अच्योष्टः – भ.का. 3/20[5] लुङ् लकार प्रथम पुरूष एकवचन

(2) अदादिगण – लगभग 150 धातुओं के रूप अदादिगण में मिलते है। इनमें से लगभग 80 धातुओं के रूप वैदिक भाषा में, लगभग 15 धातुओं के रूप लौकिक संस्कृत में और लगभग 50 धातुओं के साथ वैदिक तथा लौकिक संस्कृत दोनों में मिलते हैं। भ.का. में लगभग 46 धातुओं के रूप इस गण में मिलते है। अदादि धातुओं से कर्तृवाची सार्वधातुक परे रहते 'शप्' का लोप हो जाता है। प्रत्ययों से पूर्व धातु के स्वर का गुण होता है। अन्य प्रत्ययों से पूर्व नहीं होता।[7]

* भ.का. में उपसर्गस्थ निमित्त से अन् धातु के न् को ण् होता है।[8]
  प्राण – भ.का. 14/60[9] लिट् प्रथम पुरुष एकवचन
* भ.का. में ईश्, ईङ्, जन – इनसे परे सार्वधातुक से ध्वे को इट् आगम होता है।[10]
  इडिषे स्म – भ.का. 18/15[11] लट् मध्यम पुरुष एकवचन
  इशिषे स्म – भ.का 18/15 लट् मध्यम पुरुष एकवचन

* ईड् धातु का प्रयोग लौकिक संस्कृत में दुर्लभ है। भ.का. में केवल एक रूप मिलता है।

(3) जुहोत्यादिगण – जुहोत्यादिगण के लगभग 50 धातुओं के रूप मिलते है। इनमें से 34 रूप वैदिक भाषा में तथा लौकिक भाषा में 16 रूप मिलते है। भ.का. में इस गण की 10 धातुओं के रूप मिलते है। ये दस धातुएँ ऐसे है जिनमें कोई भी विकरण नहीं लगा और धातु को द्वित्व हो गया।[12] यथा–

हु दानाऽनदयोः	– जुहुधिः	– भ.का. 20/11[13] लोट् मध्यम पुरुष एकवचन
भी धातु	– बिभीतः	– भ.का. 18/31[14] लट् प्रथम पुरुष द्विवचन
भृज् धातु	– बिभ्रति	– भ.का. 18/24[15] लट् प्रथम पुरुष बहुवचन
ऋ गतौ धातु	– अर्रायसे	– भ.का. 4/21[16] यङन्त लट् मध्यम पुरुष एकवचन

(4) दिवादिगण – दिवादिगण में लगभग 130 धातुओं के रूप पाए जाते है। इनमें से 40 धातुओं के रूप लौकिक संस्कृत में तथा लगभग 60 धातुओं के रूप वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में मिलते है। भ.का. में 60 धातुओं के रूप दिवादिगण में मिलते है। भ.का. में अधिकतर धातुओं के रूप शारीरिक या मानसिक स्थिति से सम्बद्ध है। इस गण की धातुओं में कर्तृवाचक सार्वधतुक परे होने पर 'श्यन्' प्रत्यय होता है। श्यन् अपित् सार्वधातुक है। अतः ङितवत् होने से इसके परे रहते धातु को गुण नहीं होता।[17]

दिवु धातु – क्रीडा–विजिगीषा–व्यवहार–धुति–स्तुति–मोह–मद–स्वप्न– कान्ति–गतिषु– इन अर्थों में से केवल व्यवहार अर्थ में भ.का. में एक रूप मिलता है।

अदीव्यद् – भ.का. 17/87[18] लङ् प्रथम पुरुष एकवचन

(5) स्वादिगण – स्वादिगण में लगभग 50 धातुओं के रूप बनते है। इनमें से 30 धातुओं के रूप वैदिक भाषा में, तीन–चार धातुओं के केवल लौकिक संस्कृत में, और 20 धातुओं के रूप वैदिक तथा लौकिक दोनों में मिलते है। भ.का. में लगभग 13 धातुओं के रूप स्वादिगण में मिलते हैं।

स्वादिगण की धातुओं से कर्तृवाचक सार्वधातुक परे होने पर 'स्नु' प्रत्यय लगता है।[19] श्नु सार्वधातुक अपित् प्रत्यय हैं और अपित् सार्वधतुक ङितवत् होता है। अतः श्नु परे होने पर धातु के इक् को गुण नहीं होता।

अचिनोद – भ.का. 17/69[20]

(6) तुदादिगण – लगभग 150 धातुओं के रूप तुदादिगण में बनते है। इनमें से लगभग आधे धातुओं के रूप केवल वैदिक भाषा में लगभग 50 धातुओं के रूप वैदिक तथा लौकिक दोनों में और लगभग 20 धातुओं के रूप केवल लौकिक संस्कृत में मिलते हैं। भ.का. में 33 धातुओं के रूप तुदादिगण में मिलते है।

भ.का. में तुदादि धातुओं से कर्तृवाचक सार्वधातुक परे होने पर 'श' प्रत्यय होता है।[21] अपित् सार्वधातुक होने से श परे रहते धातु के 'इक्' को गुण नहीं होता।[22]

* तुद् व्यधने धातु के भ.का. 4 रूप उपलब्ध हैं।
  अतुदन् – भ.का. 17/12[23]
  अतुदत् – भ.का. 17/89[24]
  अतौत्सुः – भ.का. 15/4[25]
  अतौत्सीत् – भ.का. 15/37[26]

(7) रुधादिगण – इस गण में लगभग 30 धातुओं के रूप बनते हैं और इसमें लगभग आधे धातुओं के रूप केवल वैदिक भाषा में मिलते है। भ.का. में 18 धातुओं के रूप मिलते हैं। इस गण की धातुओं से कर्तृवाचक सार्वधातुक परे होने पर 'श्नम्' प्रत्यय आता है।[27] 'न' विकरण धातु के अन्तिम 'अच्' के बाद जोड़ा जाता है।[28]

* 'उतृदिर् हिंसानादरयोः' धातु के भ.का. में 'वि' उपसर्गपूर्वक तथा उपसर्ग रहित प्रयोग मिलते हैं। इस धातु का प्रयोग प्रायः वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है–

विवर्स्त्यति – भ.का. 16/15[29]
ततर्द – भ.का. 14/33[30]
तृणभ्धि – भ.का. 6/38[31]

(8) तनादिगण – पाणिनीय धातु पाठ में निर्दिष्ट 10 धातुओं में से केवल तीन धातुएँ भ.का. में पाई जाती हैं। कृण्, क्षण्, और तनु। भ.का. में इस गण की धातुओं से 'उ' प्रत्यय लगता है। कर्तृवाचक सार्वधातुक परे होने पर।[32]

कृ धातु – अध्यकारिष्महि – भ.का. 2/34[33]
क्षण् धातु – अक्षिणोत् – भ.का. 17/90[34]
तनु धातु – व्यतानीत् – भ.का. 1/11[35]

(9) क्रयादिगण – लगभग 50 धातुओं के रूप क्रयादिगण में बनते हैं। इनमें से लगभग 30 धातुओं के रूप वैदिक भाषा में, छः के रूप केवल लौकिक संस्कृत में और लगभग 15 धातुओं के रूप वैदिक तथा लौकिक दोनों में मिलते है। भ.का. में इस गण की 22 धातुओं के रूप मिलते है।

* भ.का. में इस गण की धातुओं से कर्तृवाची सार्वधातुक परे होने पर 'श्ना' प्रत्यय होता हैं।[36] यह शप् का अपवाद है। श्ना अपित् सार्वधातुक है, अतः इससे पूर्व धातु को गुण नहीं होता।
* भ.का. में 'स्तम्भु' धातु तथा 'स्कुज्' धातु से शप् के स्थान में श्ना होता है और श्नु भी।[37]
  अस्तम्भन् – भ.का. 15/31[38]
  अस्तम्भीत् – भ.का. 15/31
  प्रत्यस्कुनीत् – भ.का. 17/83[39]
  अस्कुनाच् – भ.का. 17/82[40]

(10) चुरादिगण – भ.का. में चुरादिगण की 37 धातुओं के प्रयोग उपलब्ध हैं। इस गण की धातुओं से णिच् प्रत्यय आता है।[41]

* भ.का. में अजन्त अंग को जित्, णित् प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती हैं।[42]
* अंग की उपधा 'अ' को वृद्धि होती हैं, जित्, णित् प्रत्यय परे होने पर।[43] णिजन्त धातु से क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं।[44] अन्यथा 'शेषात् कर्तृरिपरस्मैपदम्' से परस्मैपद प्रत्यय।[45]
  पूज – पूजायाम – अपूजयन् – भ.का. 17/2[46]
  अपूपुजन् – भ.का. 2/26[47]

2. लकारों के अनुसार पद –

1. **लिट् लकार –** भट्टिकाव्य में लिट् लकार का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। केवल चतुर्दश सर्ग में 220 प्रयोग उपलब्ध है। ''परोक्षे लिट्'' सूत्र से लिट् लकार होता है।[48]

* भ.का. में इदित् धातुओं को नुम् आगम हो जाता है।[49]
  ममंगिरे – भ.का. 14/10[50]
* भ.का. में मन्त्र से अतिरिक्त विषय में 'कास्' धातु तथा प्रत्ययान्त धातुओं से आम् प्रत्यय होता है, लिट् से परे रहते।[51]
  चकासांचक्रू – भ.का. 14/19[52]

2. **लुङ् लकार –** भ.का. में भूत सामान्य में लुङ् लकार होता है।[53] भ.का. के 15वें सर्ग में लुङ् लकार का अत्यधिक प्रयोग किया गया है।

* परस्मैपद में सिच् के परे इगन्त अंग को वृद्धि आदेश होता है।[54]
  अभैषीत् – भ.का. 15/1[55]
* भ.का. में चङ् परक णि प्रत्यय के परे अंग संज्ञक 'स्था' धातु की उपधा को इकार आदेश हो जाता है।[56]

प्रतिष्ठित् – भ.का. 15/1[55]

* भ.का. में माङ् निषेध वाचक उपपद होने पर अट् और आट् आगम नहीं होते।
मा अनुभूः – भ.का. 15/16[57]
मा रूषः – भ.का. 15/16

3. **लृट् लकार** – भ.का. में कियार्थ क्रिया के उपपदत्व में तथा अनुपदत्व में भी भविष्यत् काल में धातु से लृट् लकार होता है।[58]

* भ.का. में ऋकारान्त धातुओं से तथा हन् से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् आगम होता है।[59]
करिष्यामि – भ.का. 16/1[60]

* भ.का. में असम्भावना तथा अक्षमा के गम्यमान होने पर किसी भी शब्द के उपपदत्व में धातु से लिङ् तथा लृट् प्रत्यय होते है।[61]
कामयिष्यते – भ.का. 16/21[62]

* किम्, किल तथा अस्ति, भवति एवं विद्यते के उपपद होने पर असम्भावना तथा अक्षमा अर्थों में धातु से लृट् प्रत्यय होता है।[63]
किंकिल अवाप्स्यति – भ.का. 16/21[62]

4. **लङ् लकार** – भ.का. में अनद्यतन भूतकाल में धातु से लङ् लकार होता है।[64]
आशासत् – भ.का. 17/1[65]
अस्नुः – भ.का. 17/1
अहावयन् – भ.का. 17/1
अवाचयन् – भ.का. 17/1

* भ.का. में 'स्म' शब्दोत्तरक 'माङ्' शब्द के उपपद होने पर धातु से लुङ् लकार भी होता है और लङ् लकार भी।[66]
मा स्म निगृह्लाः – भ.का. 17/21[67]
मा स्म तिष्ठत – भ.का. 17/26[68]

5. **लट् लकार** – भ.का. में वर्तमान अर्थ में धातु से लट् लकार होता है।[69]

* भ.का. में स्म शब्द के उपपद होने पर भूतानधात न परोक्षार्थ वृत्ती धातुओं से लट् लकार होता है।[70]
व्यश्नुते स्म – भ.का. 18/1[71]
रोदिति स्म – भ.का. 18/1
शेते – भ.का. 18/2[72]

* भ.का. में कदा तथा कर्हि शब्द के उपपदत्व में धातु से भविष्यत् काल में विकल्प से लट् लकार होता है।[73]
कर्हि को मे प्रियो वदति – भ.का. 18/34[74]

6. **आशीर्लिङ् लकार** – भ.का. में विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, तथा प्रार्थना अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है।[75]

* आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् तथा लोट् लकार होता है।[76]
विधेयासुः – भ.का. 19/2[4]

* भ.का. में इच्छार्थक धातुओं से वर्तमान काल में विकल्प से लिङ् लकार होता है।[77]
इच्छेत् – भ.का. 19/25[78]

* भ.का. में इच्छार्थक धातुओं के उपपद होने पर धातु से लिङ् तथा लोट् लकार होते है।[79]
आनन्देः – भ.का. 19/25[78]

7. **लोट् लकार** – भ.का. में विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार भी होता है।[80]
प्रार्थनायां लोट् – वर्द्धस्व – भ.का. 20/1[81]

8. **लृङ् लकार** – भ.का. में लिङ् के निमित्त के वर्तमान होने पर धातु से भूतकाल में लृङ लकार होता है, यदि किसी कारण से क्रिया की सिद्धि न हुई हो।[82]
आशंकिष्यथा – भ.का. 21/1[83]

अभविष्यत् – भ.का. 21/2[84]
आपास्यम् – भ.का. 21/2

* भ.का. में असम्भावना तथा अक्षमा के गम्यमान होने पर किसी भी शब्द के उपपदत्व में धातु से लिङ् तथा लृट् लकार होते है।[85]
न अवदिष्यत् – भ.का. 21/3[86]
न अस्तोष्यत् – भ.का. 21/3

9. **लुट् लकार –** भ.का. में अनद्यतन भविष्यत् काल में धातु से लुट् लकार होता है।[87]
प्रयातासि – भ.का. 22/1[88]
गाधितासे – भ.का. 22/2[89]

3. **आत्मनेपद–परस्मैपद के अनुसार पद–** भ.का. में 10 गणों एवं 9 लकारों के साथ ही आत्मनेपद–परस्मैपद के भी प्रयोग पाणिनि क्रम से ही दिए गए हैं।

आत्मनेपद प्रक्रिया – भ.का. में अनुदातेत तथा ङित् धातुओं से 'ल' के स्थान पर आत्मनेपद प्रत्यय ही आदेश होते हैं।[90]
अगाधत – भ.का. 8/1[91]

* भ.का. में भाव व कर्मवाची लकार के स्थान पर आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं।[92]
अभायत – भ.का. 8/2[93]

* भ.का. में परस्पर एक–दूसरे का काम करे इस अर्थ में वर्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद प्रत्यय हो।[94]
व्यत्यतन्वाताम – भ.का. 8/3[95]

* भ.का. में गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद प्रत्यय नहीं होता।[96]
व्यत्यैताम् – भ.का. 8/3[95] 'व्यति' पूर्वक 'इण्' धातु।
व्यत्यगच्छत् – भ.का. 8/4[97] 'व्यति' पूर्वक 'गम्' धातु।
व्यतिधनन्तीम् – भ.का. 8/5[98] 'व्यति' पूर्वक 'हन्' धातु।

* भ.का. में इतरेतर और अन्योन्य उपपद हो तो कर्मव्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद प्रत्यय नहीं होता।[99]
अन्योन्य व्यतियुतः स्मः – भ.का. 8/6[100]

* भ.का. में अनुपसर्गक 'ज्ञा' धातु से कर्तृभिप्राय क्रियाफल में आत्मनेपद प्रत्यय होता है।[101]
जानानाभिः – भ.का. 8/47[102]

* एक स्थान पर महाकवि भट्टि ने उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' धातु से भी आत्मनेपद प्रत्यय किया है जो अनुचित है। इत्थं नृपः पूर्वमवालुलोचे ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य – भ.का. 1/23 में समीपवर्ती पद के उच्चारण से कर्तृगामी क्रियाफल के प्रतीत होने पर पहले सूत्रों से प्राप्त आत्मनेपद प्रत्यय विकल्प से हो।[103]
वहमानाभिः – भ.का. 8/49[104]

परस्मैपद प्रक्रिया – जिस धातु से जिस विशेषण को निमित्त मानकर आत्मनेपद का नियम किया गया उससे अन्य विशेषण 'शेष' शब्द का अर्थ है। शेष से कर्त्ता के लकार वाच्य होने पर परस्मैपद होता है, अन्य नहीं।[105]
पिबन्तीभिः – भ.का. 8/49[104]

* भ.का. में अनु–परा पूर्वक 'कृ' धातु से क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर परस्मैपद होता है, लकार के कर्तृवाचक होने पर।[106]
अनुकुर्वत् – भ.का. 8/50[107]
पराकुर्वत् – भ.का. 8/50

* भ.का. में प्र पूर्वक वह् धातु से परस्मैपद ही होता है।[108]
प्रवहन्तम् – भ.का. 8/52[109]

* भ.का. में अभि–प्रति–अति पूर्वक 'क्षिप्' धातु से परस्मैपद ही होता है।[110]
अभिक्षिपन्तम् – भ.का. 8/51[111]

* भ.का. में परिपूर्वक 'मृष्' धातु से परस्मैपद ही होता है।[112]
  परिमृष्यन्तम् – भ.का. 8/52[109]
* भ.का. में वि–आङ्–परि पूर्वक 'रम्' धातु से परस्मैपद होता है।
  अरमन्तम् – भ.का. 8/52[109]
  व्यरमत् – भ.का. 8/53[114]
  पर्यरमत् – भ.का. 8/53
* भ.का. में उप पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद होता है।[115]
  उपारंसीत् – भ.का. 8/54[116]
* भ.का. में पा, दम्, आयम्, आयस्, परिमुह्, रूच्, नृत्, वद्, वस् इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद का नियम नहीं लगता।[117]

इस प्रकार भट्टि के महाकाव्य में प्रयुक्त तिङन्त पदों का व्याकरणशास्त्रीय विवेचन प्राप्त कर लेने पर स्वाभाविक रूप से ही उनके पाण्डित्य का पता लग जाता है। वे महाकवि होने के साथ–साथ अच्छे वैयाकरण भी हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक कवि के लिए शब्दार्थ ज्ञान होना आवश्यक हैं। इस महाकाव्य का रसास्वादन वहीं कर सकता है जो वैयाकरण भी हो और आलंकारिक भी। भट्टिकाव्य के विषय में महाकवि भट्टि ने कहा भी है– जो विद्वान व्याकरण के ज्ञात है उनके लिए यह ग्रंथ दीपक की भाँति है, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से रहित लोगों के लिए अन्धे के हाथ में दिए गए दर्पण के समान है–

दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्ताऽदर्श इवाऽन्धानां भवेद् व्याकरणादृते।। भ.का. 22/33

संदर्भ

1. न गच्छामि पुरा लङ्कामायुर्यावद् दधाम्यहम्।
   कदा भवति मे प्रीतिस्त्वां पश्यामि न चेदहम्।। भट्टिकाव्यम् 18/35
2. अभून्नृपो विबुधसखः परन्तपः श्रुताऽन्वितो दशरथ इत्युदाहतः।
   गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम्।। भ.का. 1/1
3. अतिकाये हते वीरे प्रोत्सहिष्ये न जीवितुम्।
   हेपयिष्यति कः शत्रून् केन जायिष्यते यमः।। भ.का. 16/2
4. तं नो देवा विधेयासुर्येन रावणवद्वयम्।
   सपत्नांश्चाऽधिजीयास्म संग्रामे च मृषीमहि।। भ.का. 19/2
5. विलोक्य रामेण बिना सुमन्त्रमच्योष्ट सत्त्वान्नृपतिश्च्युताशः।
   मधूनि नैषीद्वयलिपन्न गन्धैर्मनोरमे न व्यवसिष्ट वस्त्रे।। भ.का. 3/20
6. वैदिक व्याकरण, पृष्ठ संख्या 505
7. अष्टाध्यायी सूत्र 2.4.72
8. अष्टाध्यायी सूत्र 8.4.19
9. जग्लौ दध्यौ वितस्तान् क्षणं प्राणं न विव्यथे।
   दैवं निनिन्द चक्रन्द देहे चाऽतीव मन्युना।। भ.का. 14/60
10. अष्टाध्यायी सूत्र 7.2.77/78
11. त्वमजानन्निदं राजन्नीडिषे स्म स्वविक्रमम्।
    दातुं नेच्छसि सीतां स्म विषयाणां च नेशिषे।। भ.का. 18/15
12. अष्टाध्यायी सूत्र 6.1.10
13. स्नाह्यनुलिम्प धूपाय निवस्स्वाऽऽविध्य च स्रजम्।
    रत्नान्याऽऽमुञ्च संदीप्ते हविर्जुहुधि पावके।। भ.का. 20/11
14. नेदानीं शक्रयक्षेन्द्रौ बिभीतो न दरिद्रितः।
    न गर्वं जहितो दृन्तौ न क्लिश्नीतौ दशाऽऽनन!।। भ.का. 18/31

15. बिभ्रत्यस्राणि साऽमर्षा रणकाम्यन्ति चाऽमराः।
चकासति च मांसाऽदां तथा रन्ध्रेषु जाग्रति।। भ.का. 18/24
16. तामुवाच स गोष्ठीने वने स्त्रीपुंसभीषणे।
असूर्यम्पश्यरूपा त्वं किमभीरूररार्यसे।। भ.का. 4/21
17. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.69
18. न्यषेधत् पावकाऽस्त्रेण रामस्तद्राक्षसस्ततः।
अदीव्यद्रौद्रमत्युग्रं मुसलाऽऽद्यगलत्ततः।। भ.का. 17/87
19. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.73
20. यमलोकमिवाग्रथ्नाद्रुदाऽऽक्रीडमिवाऽकरोत्।
शैलेरिवाऽचिनोद् भूमिं बृहद्भो राक्षसैर्हतैः।। भ.का. 17/69
21. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.77
22. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.1.3
23. न्यकुन्तंश्चक्रधाराभिरतुदन् शक्तिभिर्दृढम्।
भल्लैरविध्यन्नुग्राऽग्रैरतृंहंस्तोमरैरलम्।। भ.का. 17/12
24. ततस्त्रिशिरसं तस्य प्रावृश्चल्लक्ष्मणो ध्वजम्।
अमथ्नात्सारधिं चाऽऽशु भूरिभिश्चाऽतुदच्छरैः।। भ.का. 17/89
25. नखैरकर्तिषुस्तीक्ष्णैरदाङ्क्षुर्दशनैस्तथा।
शितैरतौत्सुः शूलैश्च भेरीश्चाऽवीवदन् शुभाः।। भ.का. 15/4
26. अतौत्सीद् गदया गाढमपिषच्चोपगूहनैः।
जानूभ्यामदमीच्चाऽन्यान् हस्तवर्तमवीवृतत्।। भ.का. 15/37
27. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.78
28. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.1.47
29. केन सम्भावितं तात कुम्भकर्णस्य राघवः।
रणे कर्त्स्यति गात्राणि मर्माणि च वितर्त्स्यति।। भ.का. 16/15
30. मित्रघ्नस्य प्रचुक्षोद गदयाऽङ्गं विभीषणः।
सुग्रीवः प्रधसं नेभे बहून् रामस्ततर्द।। भ.का. 14/33
31. भूतिं तृणदि्म यक्षाणां हिनस्मान्द्रस्य विक्रमम्।
भनज्मि सर्वमर्यादास्तनच्मि व्योम विस्तृतम्।। भ.का. 6/38
32. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.79
33. अद्मो द्विजान्देवयजीन्निहन्मः कुर्मः पुरं प्रेतनराऽधिवासम्।
धर्मो ह्ययं दाशरथे! निजो नो नैवाऽध्यकारिष्महि वेदवृत्ते।। भ.का. 2/34
34. अश्वान् विभीषणोऽतुभ्नात्स्यन्दनं चाऽक्षिणोद्द्रुतम्।
नाऽक्षुभ्नाद्राक्षसो भ्रातुः शक्तिं चोदवृहद्गुरूम्।। भ.का. 17/90
35. ऐहिष्ट तं कारयितुं कृताऽऽत्मा क्रतुं नृपः पुत्रफलं मुनीन्द्रम्।
ज्ञाताऽऽशयस्तस्य ततो व्यतानीत् स कर्मठः कर्म सुताऽनुबन्धम्।।
भ.का. 1/11
36. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.81
37. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.82
38. सामर्थ्यं चाऽपि सोऽस्तम्भीद्विक्रमं चाऽस्य नाऽस्तभन्।
शाखिनः केचिदध्यष्ठुर्न्यमाङ्क्षुरपरेम्बुधौ।। भ.का. 15/31
39. अपौहद् बाणवर्षं तद्वल्लै रामो निराकुलः।
प्रत्यस्कुनीद्दशग्रीवं शरैराशीविषोपमैः।। भ.का. 17/83
40. आस्कन्दल्लक्ष्मणं बाणैरत्यक्रामञ्च तं द्रुतम्।
राममभ्यद्रवज्जिष्णुरस्कुनाच्चेषुवृष्टिभिः।। भ.का. 17/82
41. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.25

42. अष्टाध्यायी सूत्र, 7.2.115
43. अष्टाध्यायी सूत्र 7.2.116
44. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.74
45. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.78
46. अपूजयन् कुलज्येष्ठनुपागूहन्त बालकान्।
स्त्रीः समावर्धयन् साऽस्त्राः कार्याणि प्रादिशंस्तथा।। भ.का. 17/2
47. अपूपुजन्विष्टरपाद्यमाल्यैरातिथ्यनिष्णा वनवासिमुख्याः।
प्रत्यग्रहीष्टां मधुपर्कमिश्रं तावासनाऽऽदि क्षितिपालपुत्रौ।। भ.का. 2/26
48. अष्टाध्यायी सूत्र, 6.4.88
49. अष्टाध्यायी सूत्र, 7.1.58
50. समुत्पेतुः कशाघातैरश्म्याकर्षैर्ममङ्गिरे।
अश्वाः प्रदुद्रुवुर्मोक्षे रक्तं निजगरूः श्रमे।। भ.का. 14/10
51. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.1.35
52. चकासाञ्चक्रु रूत्तस्थुर्नेदुरानशिरे दिशः।
वानरा भूधरान् रेधुर्बभञ्जुश्च ततस्तरून्।। भ.का. 14/19
53. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.2.110
54. अष्टाध्यायी सूत्र, 7.2.1
55. राक्षसेन्द्रस्ततोऽभैषीदैक्षिष्ट परितः पुरम्।
प्रातिष्ठिपच्च बोधार्थं कुम्भकर्णस्य राक्षसान्।। भ.का 15/1
56. अष्टायायी सूत्र, 7.4.5
57. राघवस्याऽमुसः कान्तामाप्तैरूक्तो न चाऽऽर्षिपः।
मा नाऽनुभूः स्वकान् दोषान् मा मुहो मा रूषोऽधुना।। भ.का. 15/16
58. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.13
59. अष्टाध्यायी सूत्र, 7.1.70
60. ततः प्ररूदितो राजा रक्षसां हतबान्धवः।
किं करिष्यामि राज्येन सीतया किं करिष्यते।। भ.का. 16/1
61. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.145
62. अमर्षो मे परः सीतां राघवः कामयिष्यते।
च्युतराज्यात्सुखं तस्मात्किंकिलाऽसाववाप्स्यति।। भ.का. 16/21
63. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.146
64. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.2.111
65. आशासत ततः शान्तिमस्नुरग्नीनहावयन्।
विप्रानवाचयन् योधाः प्राकुर्वन् मङ्गलानि च।। भ.का. 17/1
66. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.176
67. माऽपराध्नोदियं किंचिंदभ्रश्यत्पत्युरन्तिकात्।
सीता राक्षस! मा स्मैनां निगृह्लाः पाप! दुःखिताम्।। भ.का. 17/21
68. मा स्म तिष्ठत तत्रस्थो बध्योऽसावहुताऽनलः।
अस्त्रे ब्रह्मशिरस्युग्रे स्यन्दने चाऽनुपार्जिते।। भ.का. 17/26
69. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.2.123
70. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.2.118
71. व्यश्नुते स्म ततः शोको नाभिसम्बन्धसम्भवः।
विभीषणमसावुच्चै रोदिति स्म दशाऽऽननम्।। भ.का. 18/1
72. 'भूमौ शेते दशग्रीवो महार्हशयनोचितः।
नेक्षते विह्वलं मां च न मे वाचं प्रयच्छति।। भ.का. 18/2

73. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.5
74. उन्मुच्य स्त्रजमात्मीयां मां स्त्रजयति को हसन्।
नेदयत्यासनं को मे, कर्हि मे वदति प्रियम्। भ.का. 18/34
75. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.161
76. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.173
77. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.160
78. इच्छा मे परमानन्देः कथं त्वं वृत्रशत्रुवत्।
इच्छेद्धि सुहृदं सर्वो वृद्धिसंस्थं यतः सुहृत्।। भ.का. 19/25
79. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.157
80. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.162
81. समुपेत्य ततः सीतामुक्तवान् पवनाऽऽत्मजः।
दिष्ट्या वर्धस्व वैदेहि! हतस्त्रैलोक्यकण्टकः।। भ.का. 20/1
82. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.139
83. समुत्क्षिप्य ततो वह्निमैथिलीं राममुक्तवान्।
काकुत्स्थ! दयितां साध्वीं त्वमाशङ्क्ष्यिथाः कथम्।। भ.का. 21/1
84. नाऽभविष्यदियं शुद्धा यद्यपास्यमहं ततः।
न चैनां पक्षपातो धर्मात् अन्यत्र मे न अस्ति।। भ.का. 21/2
85. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.141
86. अपि तत्र रिपुः सीतां नाऽर्थयिष्यददुर्म्मतिः।
क्रूरं जात्ववदिष्यच्च जात्वस्तोष्यच्छ्रियं स्वकाम्।। भ.का. 21/3
87. अष्टाध्यायी सूत्र, 3.3.15
88. ततो रामो हनूमन्तमुक्तवान्दृष्टमानसम्।
अयोध्यां श्वः प्रयातासि कपेः! भरतपालिताम्।। भ.का. 22/1
89. गाधितासे नभो भूयः स्फुटन्मेघघटाऽऽवलि।
ईक्षितासेऽम्भसां पत्युः पयः शिशिरशोकरम्।। भ.का. 22/2
90. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.12
91. अगाधत ततो व्योम हनूमानुरूविग्रहः।
अत्यशेरत तद्वेगं न सुपर्णार्कमारूताः।। भ.का. 8/1
92. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.13
93. अभायत यथाऽर्केण सुप्रातेन शरन्मुखे।
गम्यमानं न तेनाऽऽसीदगतं क्रामता पुरः।। भ.का. 8/2
94. अष्टाध्यायी सूत्र, 6.3.14
95. वियति व्यत्यतन्वातां मूर्ती हरिपयोनिधि।
व्यत्यैतां चोत्तमं मार्गमर्केन्द्रेन्दुनिषेवितम्।। भ.का. 8/3
96. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.15
97. व्यतिजिग्ये समुद्रोऽपि न धैर्यं तस्य गच्छतः।
व्यत्यगच्छन्न च गतं प्रचण्डोऽपि प्रभञ्जन।। भ.का. 8/4
98. व्यतिध्नन्तीं व्यतिध्नन्तां राक्षसीं पवनाऽऽत्मजः।
जघानाऽऽविश्य वदनं निर्यान् भित्त्वोदरं द्रुतम्।। भ.का. 8/5
99. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.16
100. अन्योन्यं स्म व्यतियुतः शब्दान् शब्दैस्तु भीषणान्।
उदन्वांश्चालिनोद्धूतो म्रियमाणा च राक्षसी।। भ.का. 8/6
101. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.76
102. नित्यमुद्यच्छमानाभिः स्मरसम्भोगकर्मसु।
जानानाभिरलं लीलाकिलकिंचितविभ्रमान्।। भ.का. 8/47

103. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.77
104. कान्तिं स्वां वहमानाभिर्यजन्तीभिः स्वविग्रहान्।
नेत्रेरिव पिबन्तीभिः पश्यतां चित्तसंहतीः।। भ.का. 8/49
105. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.78
106. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.79
107. ता हनूमान् पराकुर्वन्नगमत् पुष्पकं प्रति।
विमानं मन्दरस्याद्रेरनुकुर्वदिव श्रियम्।। भ.का. 8/50
108. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.81
109. प्रवहन्तं सदामोदं सुप्तं परिजनाऽन्वितम्।
मधोने परिमृष्यन्तमारमन्तं परं स्मरे।। भ.का. 8/52
110. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.80
111. तस्मिन् कैलाससंकाशं शिराश्रृङ्गं भुजद्रुमम्।
अभिक्षिपन्तमैक्षिष्ट रावणं पर्वतश्रियम्।। भ.का. 8/51
112. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.82
113. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.83
114. व्यरमत् प्रधनाद् यस्मात् परित्रस्तः सहस्त्रदृक्।
क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनान्मारूताऽऽत्मजः।। भ.का. 8/53
115. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.84
116. उपारंसीच्च संपश्यन् वानरस्तं चिकीर्षितात्।
रम्यं मेरूमिवाऽऽधूतकाननं श्वसनोर्मिभिः।। भ.का. 8/54
117. अष्टाध्यायी सूत्र, 1.3.89

संदर्भ ग्रंथ

1. वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी – भट्टों जी दीक्षित, चौखम्भा विद्या भवन प्रकाशन, वाराणसी, 1958
2. संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनी – कपिलदेव, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान।
3. संस्कृत व्याकरण का उद्भव व विकास – डॉ. सत्यकाम वर्मा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 1971
4. भट्टिकाव्यम् – पं. श्री शेषराज शर्मा 'रेग्मी' चौखम्भ संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।
5. भट्टिकाव्यम् – डॉ. श्री गोपालशास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।